Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

'संगीत रत्नाकर' में वर्णित वाद्यों के प्रयोजन की भूमिका: वाद्याध्याय के परिप्रेक्ष्य में

SOUMYA JAISWAL
Research Scholar, Department of Instrumental Muisc, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

सारांश *:- भारतीय संगीत के व्यापक क्षेत्र में सांगीतिक विषयों का व्यवस्थित निरूपण तथा प्रामाणिकता के दृष्टिकोण में शत-प्रतिशत शुद्धतम रूप में वर्णित करने वाले सांगीतिक शास्त्रीय ग्रन्थों में शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' का अप्रतिम स्थान है | संगीत रत्नाकर के विषयवस्तु में संगीत के तीनों अंग गायन, वादन और नृत्य का उल्लेख सप्त अध्यायों के अंतर्गत प्राप्त होता है | विभिन्न शास्त्रकारों ने वाद्य वर्गीकरण अपने-अपने मतानुसार किया परंतु एकमात्र ग्रंथ संगीत रत्नाकार के वाद्याध्याय का अनुकरण परवर्ती ग्रंथकारों ने अखंडित रूप से किया है | वाद्याध्याय में चतुर्विध वाद्य- तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के वर्गीकरण, बनावट, लक्षण एवं वादनशैली का वर्णन है | प्रस्तुत शोध पत्र में संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में वर्णित चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण के आधार पर सांगीतिक वाद्यों का प्रयोजन सिद्ध किया जिसमें विभिन्न वाद्यों का गूढ़ एवं सूक्ष्म अध्ययन से अनुमानित किया जा सकता है कि तत्कालीन काल में चतुर्विध वाद्यों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है इसी आधार पर वर्तमान में वाद्यों का क्रमिक वर्गीकरण होता है |*

शोध विधि :- ऐतिहासिक विधि |
मुख्य शब्द *:- वाद्याध्याय, वाद्य-वर्गीकरण, स्वर वाद्य, लय वाद्य |*

भूमिका

उत्तर भारतीय संगीत में शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर का रचना मध्य काल के तेरहवीं शताब्दी में हुआ जो की एक वृहद विश्वकोश के समान है | यह संस्कृत भाषा में लिखा एक शास्त्र उपर्युक्त ग्रंथ है जिसमें संगीत के तीनों अंगों गीत, वाद्य और नृत्य के सांगीतिक सूक्ष्मता को सात अध्यायों के अंतर्गत वर्णन किया इसलिए इसे सप्ताध्यायी कहते है- स्वरगताध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय |

भारतीय शास्त्रकारों के धार्मिक मतानुसार वाद्यों की उत्पत्ति का कारण महादेव के डमरु, सरस्वती की वीणा, कृष्ण की मुरली और नारद की वीणा से माना गया है | 'याज्ञवल्क्य ने कहा है की श्रुति तथा शास्त्र प्रमाण को जानने वाला, वीणा वादन में संलग्न तथा ताल से अभिज्ञ पुरूष मोक्ष को अनायास प्राप्त कर लेता है' |[1] वाद्यों के इतिहास और प्रयोजन की व्यापकता अधिक है ऐसा भी माना जाता है कि वाद्यों का प्रयोग राजाओं के राज्य सभा, यात्रा के समय, विवाह, सोलह संस्कारों, नाटकों के प्रयोग और साधारण मंगल कृत्यों आदि में होता है | संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में वाद्यों के तीन मूल प्रयोजन को सिद्ध किया गया है जो इस प्रकार से है-

- सांगीतिक रचना के स्वर पक्ष को उत्पन्न करना
- गीत का रंजन करना यानि उसे ज्यादा रंजक, समृद्ध और आनन्ददायक बनाना
- गीत के काल का मापन करना |

संगीत रत्नाकर में सम्पूर्ण वाद्यों को चार भाग में विभाजित किया जिसको चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण के नाम से जाना गया है जिसका अनुकरण वर्तमन समय तक होता आ रहा है यह चार वर्ग इस प्रकार से है- तत् वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य, घन वाद्य |

तत् वाद्य

तत् वाद्य का अर्थ है 'तंत्री या तार से युक्त वाद्य' जिसका प्रमुख रूप से कार्य विस्तार करना होता है | तत् शब्द की उत्पत्ति 'तनु' धातु में 'त' प्रत्यय लगाकर हुई है | संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में तत् वाद्ययंत्र के वादनविधि में श्रुति, स्वर, *मूर्च्छना*-क्रम, तान, अलंकार, जाति, गीति आदि सांगीतिक तत्वों एवं उसके बनावट का वर्णन है | शारंगदेव के अनुसार 'ततं तंत्री ततं वाद्यं'[2] अर्थात् बजाने योग्य तंत्री वाद्य जो विस्तारित हो वह तत् वाद्य है | तत् वाद्य का दूसरा नाम वीणा है क्योंकि वीणा का प्रयोग समान्यत: तंत्री वाद्य में मुख्य रूप से किया जाता है | वैसे तो वीणा की उत्पत्ति का स्त्रोत यजुर्वेद है जहाँ इसका प्रयोग ऋग्वैदिक ऋचाओं की सौन्दर्यात्मक अभिवृद्धि के लिए किया जाता था |

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

वीणा का आज जो भी विकसित रूप है उसके पीछे एक विस्तृत इतिहास है | मध्यकाल में वीणा का प्रयोग तंत्री वाद्य के उपनाम से जाना जाता है | शारंगदेव ने तंत्री वाद्यों को श्रुति और स्वर के आधार पर दो भागों में विभाजित ऐसे किया है- (i) श्रुति वीणा और (ii) स्वर वीणा

ततं वीणा द्विधा सा च श्रुतिस्वरविवेचनात्, तत्र श्रीशार्ङ्गदेवेन श्रुतिवीणोदिता पुरा

वक्ष्यते स्वरवीणात्र तस्यामपि विचक्षणाः, अङ्कित्त्वा स्वरदेशानां भागानुद्भिन्दते श्रुतीः |[3]

श्रुति वीणा- श्रुतियों की सिद्धि हेतु चतु: सारणा का निर्माण किया गया जिससे श्रुति वीणा पर बाईस श्रुतियों का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण हो | श्रुति वीणा में प्रत्येक श्रुति के लिए एक तंत्री निश्चित की गई जिस कारण एक-एक तार को छेड़ने से स्वर स्वत: उत्पन्न होते है |

स्वर वीणा- स्वर वीणा के आधार पर सम्पूर्ण तंत्री वाद्यों का वादन क्रिया सम्पन्न किया जाता है | इसमें विस्तार विभिन्न विधियों के द्वारा किया जाता है | कल्लिनाथ के अनुसार श्रुति की ध्वनि कम-ज्यादा न हो इसलिए स्वरों की उत्पत्ति के लिए स्वरस्थानों के मध्य श्रुतियाँ उत्पन्न की जाती है | स्वर वीणा के ही अंतर्गत समस्त तंत्री वीणाओं को स्थान मिला है, शारंगदेव के अनुसार इसके कई भेद है जैसे:- एकतंत्री, नकुली, त्रितन्त्री, चित्रा, विपंची, मत्तकोकिला, आलापिनी, किन्नरी, पिनाकी एवं नि:शंक | इस प्रकार से-

तद्भेदास्त्वेकतन्त्री स्यान्नकुलश्च त्रितन्त्रिका, चित्रा वीणा विपञ्ची च ततः स्यान्मत्तकोकिला

आलापिनी किंनरी च पिनाकीसंज्ञिता परा, निःशङ्कवीणेत्याद्याश्च शार्ङ्गदेवेन कीर्तिताः |[4]

1. एकतंत्री वीणा- एकतंत्री स्वर वीणा के अंतर्गत आने वाले प्रमुख वीणाओं में से एक है | शारंगदेव ने एकतंत्री को सारी वीणाओं का मूल माना है और इसका उपयोग मंगलार्थ कार्य हेतु किया जिसके दर्शन और स्पर्श मात्र से ही स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है | 'इसके डाँड, तार और सारिका को क्रमश: शिव-पार्वती और सूर्य के समान माना है- 'दण्ड शम्भुरुमा तंत्री ककुभ: कमलापति'[5] | एकतंत्री वीणा संरचनात्मक दृष्टि से वैदिक कालीन घोषा, घोषक या घोषवती वीणा के समान है- 'घोषकश्चैकतंत्रिका' | यह एक पर्दा विहीन वाद्य है जिसमें एक तार होते है और वादन बाएं हाथ में बांस की एक बारह अंगुल लंबी शलाका से किया जाता है |

2. नकुली वीणा- शारंगदेव के अनुसार दो तारों से युक्त वीणा को नकुली वीणा की संज्ञा दी गई- 'तंत्रीद्वयेन नकुल' जिसे दोतंत्री भी कहा जाता है | संगीत-रत्नाकर पर सिंह भूपाल ने टीका करते हुए स्पष्ट किया कि नकुली को मत्तकोकिला की अंग वीणा के रूप में जाना जाता है जिसके दो तार पर विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग स्वर उत्पन्न किया जाता है, यथा- 'नकुलादयस्तु मत्तकोकिलाया अङ्गम् |[6]

3. त्रितन्त्री वीणा- शारंगदेव के अनुसार तीन तारों से युक्त वीणा को त्रितन्त्री कहा गया है- 'स्यादन्वर्था त्रितन्त्रिका' | कल्लिनाथ के अनुसार कहीं-कहीं इसे जन्त्र नाम से भी जाना जाता है 'तत्रत्रितन्त्रिकैव लोके जन्त्रशब्देनोच्यते' |[7] ऐसा भी माना जाता है कि इसी त्रितन्त्री वीणा से सितार वाद्य की उत्पत्ति हुई |

4. चित्रा वीणा- शारंगदेव के अनुसार सात तारों से युक्त वीणा को सप्ततन्त्री या चित्रा वीणा कहा गया है इस प्रकार से- 'तन्त्रीभि: सप्तभिश्चित्रा' | इसके सात तारों को सप्तक के सात तारों में मिलाया जाता है तथा इसका वादन अंगुलियों से होता है- 'अंगुलीवादनीया चित्रा' | वादन विधि के विस्तार के लिए कारण, वृति, तत्व, धातु और निर्गीत मुख्य है | नि:संदेह रूप से इसका वर्णन रामायण, महाभारत, भरत कृत नाट्यशास्त्र और मतंग कृत वृहद्देशी ग्रन्थों में है मतंग मुनि को चित्रा वीणा वादक कहा जाता है |

5. विपंची वीणा- शारंगदेव के अनुसार 'विपंची नवभिर्मता' अर्थात् विपंची वीणा नौ तारों से युक्त है इसका वादन कोण एवं अंगुली दोनों से किया जाता है- 'कोणाङ्गुलीवादनीया विपञ्चिका' इसी कारण शारंगदेव ने 'विपञ्च्यामुभयं परे' अर्थात् उभय रूप से कोण एवं उंगली के समन्वय द्वारा विचित्र वीणा का वादन हो ऐसा उल्लेखित किया है | इसके नौ तंत्री क्रमश: षडज ग्रामीय मूर्च्छना के स्वर जैसे- षडज, ऋषभ, गांधार, अन्तर्गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद और काकली निषाद को स्थापित किया | विपंची वीणा को वैदिक कालीन हार्प वीणा के समान माना है |

6. मत्तकोकिला वीणा- इक्कीस तारों वाली वीणा को मत्तकोकिला की संज्ञा दी गई है जो सभी वीणाओं में मुख्य है- 'तन्त्रीणामेकविंशत्या कीर्तिता मत्तकोकिला' |[8] संगीत-रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ ने इसको स्वरमंडल का रूप बताया है- 'मत्तकोकिलैव लोके स्वरमण्डलमित्युच्यते' |[9] शारंगदेव के अनुसार यह तीनों स्थान मन्द्र, मध्य और तार में सात स्वर की उत्पत्ति का कारण है- 'मुख्येयं सर्ववीणानां त्रिस्थानै सप्तभि: स्वरै |

7. आलापिनी वीणा- यह मध्ययुगीन एक तंत्री वीणा के समान है इसमें एक तंत्री तो कहीं-कहीं दो तंत्री का प्रयोग किया जाता है जिन्हें मध्यम और पंचम स्वर में मिलाते है | शारंगदेव ने आलापिनी का लक्षण बताते कहा कि इसमें तीन सारिकाओं का बांधा जाता है- 'त्रण्यितानि निबद्धयन्ते यत्र सलापिनी मता' | इसका वादन दायें हाथ की मध्यमा तथा अनामिका अंगुली से करना चाहिए | प्राचीन समय में आलापिनी को आलवणी कहते थे |

8. किन्नरी वीणा- शारंगदेव ने किन्नरी वीणा को दो भेद में विभाजित किया है:- मार्ग और देशी | मार्ग किन्नरी के पुन: दो प्रकार वर्णित है- (क) लघ्वी किन्नरी और (ख) वृहती किन्नरी | लघ्वी वीणा की लम्बाई तीन वितस्ति और पाँच अंगुल होती है और यह कीलक से अन्वित होती है | इसमें नीचे की ओर से सारिकाएं स्थापित करके चौदह स्वर उत्पन्न किए जाते है | इसमें तीन तुम्बा का प्रयोग होता है जहाँ मंझला तुम्बा बड़ा और अगल-बगल का तुम्बा छोटा होता है | इसमें दो तंत्री बाँधें जाते है जिसका वादन दाहिने हाथ से तार को छेड़ते हुए बाएं हाथ की उंगली से स्वर स्थान को दबाने से स्वर की उत्पत्ति होती है | वृहती किन्नरी के दंड की लम्बाई पचास अंगुल और चौड़ाई छ: अंगुल की होनी चाहिए | इसके पश्चात देशी किन्नरी के तीन प्रकार का वर्णन किया- (क) वृहती किन्नरी, (ख) मध्यमा किन्नरी, और (ग) लघ्वी किन्नरी |

9. पिनाकी वीणा- पिनाकी का अर्थ 'धनुष' है यह वीणा धनुष के आकार की डाँड के समान है इस प्रकार से- 'पिनाक्यां धनुषः कमैकचत्वारिशदङ्गुला' |[10] यह धानुषी वीणा इक्कीस अंगुल लंबा है इसके दोनों खूंटियों में तार बांधें जाते है इसी के आधार पर स्वर की उत्पत्ति होती है | इसके तुम्बे दोनों पैरों के बीच दबाकर और पिनाकी की ऊपर की शिखा वाले भाग को कन्धे पर रखने का विधान है, दाहिने हाथ में पकड़े हुए धनुष से तार पर रगड़ कर ध्वनि पैदा की जाती है |

10. नि:शंक वीणा- नि:शंक वीणा शारंगदेव द्वारा आविष्कृत वीणा है शारंगदेव के अनुसार- 'यत्र निःशङ्कवीणा सा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता, त्रिस्थानस्वररागादिव्यक्ति: संजायते तया'[11] अर्थात् नि:शंक वीणा पर तीन स्थानों मन्द्र, मध्य एवं तार पर स्वर और राग की उत्पत्ति होती है |

सुषिर वाद्य

जो वाद्य मुख वायु के द्वारा फूंककर बजाए जाते है उसे सुषिर वाद्य कहते है | यह वाद्य यंत्र लकड़ी या धातु से निर्मित होती है जिसमें मुख के द्वारा हवा फूंकने से स्वर की उत्पत्ति होती है | सांगीतिक ग्रन्थों में सुषि का अर्थ छिद्र माना गया है इसी कारण सुषिर वाद्यों में फूंकने के लिए छिद्र बनाया जाता है | शारंगदेव कृत संगीत-रत्नाकर में सुषिर वाद्य का भेद दिया है जिसके अंतर्गत वंश, पाव, पाविका, मुरली, मधुकरी, काहला, तुण्डकिनी, चुक्का, शृंग और शंख का लक्षण सहित विस्तृत वर्णन है | इस प्रकार से-

वंशः पावः पाविका च मुरली मधुकर्यपि,
काहलातुण्डुकिन्यौ च चुक्का शृङ्गमतः परम्
शङ्खादयश्च वाद्यस्य सुषिरस्य भिदा मताः |[12]

1. वंश या बाँसुरी- संगीत-रत्नाकर में सुषिर वाद्यों में वंश या वंशी का प्रमुख स्थान है | मूलत: बांस से बना होने के कारण इसका नाम वंशी पड़ा | मध्यकाल के कृष्णभक्ति पदों में इसको बाँसुरी नाम मिला जो आधुनिक काल में भी प्रचलित है | शारंगदेव के अनुसार वंशी खैर की लकड़ी, हाथी-दांत, चंदन, लोहे, कांसे, चांदी या सोने से बनाई जाती है जो कि गोलाकार, चिकनी और गाँठरहित होती है, इस प्रकार

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

से- 'वैणव: खादिरो दान्तश्चान्दनौ रात्तचन्दन: आयस: कांस्यजो रौप्यो वंश: स्यात् काञ्चनोऽथवा' |[13] वंश के छेद में मुंह से फूँक भरी जाती है उसे मुख रन्ध्र कहते है वंश में कुल आठ छिद्र होते है जिसमें से सात छिद्र सात स्वरों की उत्पत्ति के लिए तथा आठवां छिद्र नाद की उत्पत्ति के लिए किया जाता है | फूंकने वाले छिद्र के एक अंगुल बाद तार स्वरों को व्यक्त करने के लिए जो छिद्र होता है उसे तार रन्ध्र कहते है | मुखरन्ध्र औरताररन्ध्र के बीच में जितनी भी जगह को रिक्त छोड़ा जाता है उस रिक्त जगह की दूरी से वंश के अनेक भेद उत्पन्न होते है | शारंगदेव ने बाँसुरी के चौदह भेद निश्चित किए है जिनके नाम इस प्रकार से है- उमापति, त्रिपुरुष, चतुर्मुख, पंचवक्त्र, षण्मुख, मुनि, वसु, नगेन्द्र, महानन्द, रुद्र, आदित्य, मनु, कलानिधि और अष्टादश |

2. पाव- शारंगदेव ने पाव के विषय में कहा है, वेणु से बनाया हुआ नौ अंगुल से परिमित वंश के पत्तों से ढका हुआ पाव होता है यह एक माधुर्य ध्वनि से युक्त कर्णप्रिय वाद्य है | इसका वादन लोकरीति से होने के कारण यह एक लोक वाद्य की श्रेणी में आता है | कल्लिनाथ के अनुसार- एषा लोकानां रीत्या वादनीय: |[14]

3. पाविका- शारंगदेव के अनुसार यह वेणु से बनी हुई बारह अंगुल दीर्घ वाद्य है इसमें पाँच रन्ध्र द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है | इसका अन्य नाम 'पावी' है |

4. मुरली- मुरली दो हाथ से अधिक विस्तार वाली मुखरन्ध्र से युक्त तथा चार स्वररन्ध्र वाली होती है जिसके द्वारा इसकी ध्वनि मधुर होती है | कहीं-कहीं इसे संचुली वाद्य की संज्ञा दी गई है |

5. मधुकरी- संगीत-रत्नाकर के अनुसार शृंग के द्वारा बनायी गई अट्ठाईस अंगुल दीर्घ की मधुकरी होती है | इसके मुखरन्ध्र के अतिरिक्त सातरन्ध्र और होते है | कहीं-कहीं इसको महुर के नाम से भी जाना जाता है इसके बनावट की समानता काहला वाद्य से मिलता है |

6. काहला- शारंगदेव के अनुसार काहला तांबे, चांदी अथवा सोने के मध्य में छिद्र वाले धतूरे पुष्प के आकार के मुख वाली तीन हाथ जितनी दीर्घ काहला वाद्य होती है | इसका वर्णोच्चार हा और हू वर्ण से युक्त होती है | काहला आधुनिक समय में शहनाई वाद्य के समान है जिस प्रकार शहनाई का वादन शुभ अवसर पर होता है उसी प्रकार काहला का वादन शुभ माना जाता है जिसे काहली भी कहा जाता है |

7. तुण्डकिनी- तुण्डकिनी एक जोड़ी वाद्य है जिसमें सात स्वरों की उत्पत्ति होती है, यह दो हाथ जितनी दीर्घ होती है | यह वाद्य काहला के समान होती है | यह भी एक लोक वाद्य है जिसे तुरुतुरी और तित्तिरी भी कहा जाता है | आधुनिक समय के तुरही वाद्य को तुण्डकिनी का रूप बताया गया है | शारंगदेव ने दो तुण्डकिनियों की जोड़ी को यमल वाद्य कहा है- 'यमलं तुण्डकिन्योश्च वाद्यं वाद्यविदो विदु:' |

8. चुक्का- शारंगदेव के अनुसार चार हाथ जितनी दीर्घ तुण्डकिनी को चुक्का कहा गया है, 'तुण्डकिन्येव चुक्का स्याद् दैर्घ्ये हस्तचतुश्टया'|

9. शृंग- शृंग वाद्य का निर्माण भैंस के सींग से होता है | इसके आगे के भाग में दो अंगुल की दूरी पर छेद करके फुत्कार हेतु रन्ध्र बनाए जाते है | इसका वादन ग्वालों के झुंड में होता है जहाँ विविध प्रकार के ध्वनि से युक्त शृंग का वादन होता है |

10. शंख- शारंगदेव ने इसका लक्षण देते हुए कहा कि इसकी नाभि गहरी होनी चाहिए | शंख का ढ़ाचा बारह अंगुल का शिखर धातु से बद्ध होता है | यह एक आदि वाद्य है जिसका प्रयोह मंदिरों में आरती के समय किया जाता है |

अवनद्ध वाद्य

भारतीय संगीत का आधारभूत तत्व लय एवं ताल है प्रारम्भ में इन दोनों की अभिव्यक्ति हाथ की विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से की गई परंतु धीरे धीरे संयोजित और क्रमिक लय-ताल देने के लिए अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होने लगा | अवनद्ध वाद्य भीतर से खोखले और ऊपर से चमड़े द्वारा आच्छादित होते है इसका वादन हाथ या किसी अन्य धातु से आघात करने पर होता है | शारंगदेव के अनुसार 'चर्मावनद्धवदनमवनद्धं तु वाद्यते'[15] अर्थात् जिस वाद्य का मुख चमड़े से ढ़का हुआ हो और उस पर आघात करने से ध्वनि की उत्पत्ति हो वह अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में आता है | अवनद्ध वाद्य के प्रारम्भिक विकास में मिट्टी के बर्तन के मुख पर चमढ़ा ढ़ककर बजाया जाता है

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

इसके पश्चात वैदिक काल में दुन्दुभि एवं भूमि दुन्दुभि वाद्य प्रमुख है | भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्य के सौ भेदों का वर्णन है जिसमें मृदंग, पणव और दर्दुर को पुष्करत्रय की संज्ञा दी है | 13 वीं शताब्दी में शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में अवनद्ध वाद्य के भेदों का निरूपण इस प्रकार से किया है-

पटहो मर्दलश्चाथ हुडुक्का करटा घट: घडसो ढवसो ढक्का कुडुक्का कुडुवा तथा

रुनजा डमरुको डक्का मण्डिडक्का च डक्कुली सेल्लुका झल्लरी भाणस्त्रिवली दुन्दुभिस्तथा

भेरीनि: साणतुम्बक्यो भेदा: स्युरवनद्धगा: |[16]

अर्थात अवनद्ध वाद्य के भेद क्रमश: पटह, मर्दल, हुडुक्का, करटा, घट, घड़स, ढवस, ढक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रुन्जा, डमरुक, डक्का, मण्डिडक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुंदुभि, भेरी, नि:साण और तुम्बकी है जिसके लक्षण क्रमानुसार दिए गए है |

1. पटह- अवनद्ध वाद्य में पटह का प्रमुख स्थान है जिसे लोक जगत में ढोल, ढोलक और ढोलकी के नाम से जाना जाता है | शारंगदेव ने पटह के दो भेद किए है- 'मार्गदेशीगतत्वेन पटहो द्विविधो भवेत' अर्थात् मार्ग और देशी पटह जिसके लक्षण का वर्णन प्राप्त होता है | संगीत रत्नाकर के अनुसार मार्ग पटह दो मुख वाला वाद्य है जिसका दाहिना मुहँ बायां मुहँ से एक अंगुल बड़ा होता है | इसको कमर में बांध करके बजाया जाता है | मार्ग पटह वर्तमान में ढोलक वाद्य से मिलता है | देशी पटह की लम्बाई और मुख की चौड़ाई मार्ग पटह की तुलना में छोटी है इसकी यह खैर के लकड़ी से निर्मित होती है | शारंगदेव ने दोनों पटह के तीन भेद का उल्लेख किया है- उत्तम, मध्यम और अधम | इन दोनों के सोलह वर्ण निश्चित है जिसमें कवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, र और ह प्रमुख है जिसे 'पाट' की संज्ञा दी गई है | इसको गोद में आड़ रूप में रखकर कोण से वादन किया जाता है | शारंगदेव ने पटह के ऊर्ध्वक्त्र वादन का भी वर्णन किया है |

2. मर्दल- शारंगदेव के अनुसार मर्दल वाद्य की लकड़ी गठीली होनी चाहिए | इस पर चमड़े की पट्टी लगी रहती है जिसे आज के समय में बद्धी कहते है | यह लाल चंदन और खैर की लकड़ी से निर्मित होती है इसका बायां मुख बारह अंगुल और दाहिना मुख साढ़े ग्यारह अंगुल का होता है | इसमें कुल बत्तीस वर्णो का प्रयोग होता है | मर्दल वादक का चार भेद निश्चित है- वादक, मुखरी, प्रतिमुखरी और गीतानुग |

3. हुडुक्का- हुडुक्का की लम्बाई एक हाथ, गोलाई अट्ठारह अंगुल और छ: छिद्र होते है जिसमें से होकर रस्सी बांधी जाती है | रस्सी के अंत में एक और रस्सी होती है जिसका वादन होता है | शारंगदेव ने स्पष्ट रूप से यह सिद्ध किया कि लोक जन में हुडुक्का को आवाज और स्कन्धावज के नाम से जाना जाता है- 'लक्ष्यज्ञास्त्वावजं प्राहुरिमां स्कन्धावजं तथा' |

4. करटा- इसका निर्माण बीजक वृक्ष से होता है जिसकी कुल परिधि चालीस अंगुल, चौदह अंगुल के दो मुख जिसको चमड़े से मढ़ा जाता है | इसका वादन कोण से होता है जिसमें तिरकिति रिकिरीति वर्णो की गूंज सुनाई देती है |

5. घट- घट का निर्माण मिट्टी से होता है इसकी मिट्टी अन्दर से ठोस और चिकनी एवं उचित रूप से आग में पकाया हुआ होना चाहिए | वादन के लिए दोनों हाथों का प्रयोग करते है और इसके निकलने वाले पाट मर्दल के समान होते है |

6. घड़स- घड़स की समानता हुडुक्का वाद्य के समान है जो लक्षण हुडुक्का में परिलक्षित होते है उसी को शारंगदेव ने घड़स में बताते हुए कहा कि इसका दाहिना और बायां मुख रज्जु से यंत्रित होता है | इसका वादन बाएं हाथ की उंगलियों से आघात करते हुए अंगूठे से दबा करके किया जाता है |

7. ढवस- इसकी लम्बाई उन्तालीस अंगुल और दो मुख चमड़े से मढ़े रहते है जिसमें सात छिद्र होते है | इसका वादन दाहिने हाथ में कोण पहनकर बाएं हाथ से आघात करके बजाया जाता है |

8. ढक्का- ढक्का वाद्य का बनावट कुछ-कुछ ढवस के समान है इसलिए शारंगदेव ने ढक्का का वर्णन करते हुए ढवस के लक्षण का प्रयोग किया | इसकी लम्बाई तेरह अंगुल और वादन कोण से होता है |

9. कुडुक्का- शारंगदेव के अनुसार पूर्व उल्लेखित हुडुक्का वाद्य में जब अर्गला का प्रयोग नहीं होता तब कुडुक्का वाद्य का निर्माण होता है इसका वादन कोण से करना चाहिए |

10. कुडुवा- इसका निर्माण बीज वृक्ष की लकड़ी से होता है यह सात अंगुल और दो मुख जिसमें सात-सात छेद होते है | इसकी लम्बाई इक्कीस अंगुल, मोटाई तीन अंगुल और वादन कोण से होना चाहिए |

11. रुन्जा- इसकी लम्बाई अट्ठाइस अंगुल और दोनों मुख ग्यारह अंगुल के चमड़े से मढ़ा होना चाहिए | रुन्जा का वादन करने पर 'रुं' शब्द उत्पन्न होता है इसलिए रूंकार की अधिकता होने के कारण इसका नाम रुन्जा हो गया | कहीं-कहीं इसे गुंजा भी कहा जाता है |

12. डमरुक - डमरूक की लम्बाई एक वितस्ति है इसके दो मुख आठ अंगुल के होते है जो चमड़े से मढ़े हुए होते है, इसके वादन के लिए मोम और मिट्टी से बनी एक रस्सी लगाई जाती है फिर दोनों हाथों से धारण करके बजाया जाता है वादन करने पर इसमें से 'डव-डव' शब्दों की उत्पति होती है | आधुनिक समय का डमरु वाघ डमरुक का पर्याय है।

13. डक्का- इसकी लम्बाई एक वितस्ति होती है और इसके बीच का भाग पतला होता है। आठ अंगुल के दो मुख होते हैं जिसमें दो-दो तार लगाए जाते है | इसका वादन कोण से होता है जिसमें दो तत्रियों का प्रयोग नाद की उत्पति के लिए किया जाता है जिसन वादन बारह अंगुल की श्लाका से करते हैं।

14. मण्डिडक्का- शारंगदेव ने डक्का को ही मण्डिडक्का माना है- 'डक्कैव मण्डिङक्का स्यात्' इसकी लम्बाई सोलह अंगुल की और दो मुख आठ अंगुल के होते हैं। मण्डिडक्का वाघ का प्रयोग शक्ति पूजा एवं स्तुति गान में किया जाता है। इसके पाट हुडुक्का के समान है |

15. डक्कुली- डक्कुली वाद्य का निर्माण कांस्य से होता है जिसमें गाय के सींग एवं हाथी के दांत का प्रयोग होता है इसकी लम्बाई पाँच अंगुल एवं दोनों मुख चार अंगुल की होती है |

16. सेल्लुका- इसकी लम्बाई छब्बीस अंगुल और गोलाई तीस अंगुल की है इसके दोनों मुख दस अंगुल के होते है | इसका वादन दाएँ हाथ से कोण द्वारा और बाएं हाथ से बाएं मुख पर आघात करके किया जाता है | जिससे दाहिने मुख से धिंकार और बाएं मुख से झंकार शब्द की उत्पत्ति होती है | इसे नाल जाति का वाद्य कहा गया है |

17- झल्लरी- झल्लरी की लम्बाई बारह अंगुल और गोलाई अट्ठारह अंगुल की होती है इसको बाएं हाथ में लेकर दाहिने हाथ से वादन किया जाता है | भरतमुनि ने झल्लरी को प्रत्यंग वाद्य की श्रेणी में रखा है | इसका बनावट चंग या खंजरी के समान है जिसे चक्रवाघ या करचक्र के नाम से भी जाना जाता है |

18. भाण- इसकी लम्बाई साढ़े बारह और कुल गोलाई बारह अंगुल की निश्चित है जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है | भाण को झल्लरी के समान माना गया है |

19. त्रिवली- इसकी लम्बाई ग्यारह अंगुली और सात अंगुल के दो मुख होते है जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है | इसमें त दां दो दें वर्ण की उत्पत्ति होती है | इस वाघ को त्रिकुला भी कहा जाता है |

20. दुन्दुभि- दुन्दुभि वैदिक काल से ही अवनद्ध वाद्य की प्रमुख श्रेणी में आती है | इसका निर्माण आम के पेड़ से होता है जिसको 'महागात्र' अर्थात् बड़े शरीर और 'महाध्वनि' अर्थात् बड़ी ध्वनि वाले वाद्य की संज्ञा दी गई है | इसका वादन कोण से होता है जिसकी ध्वनि मेघ के गंभीर गर्जन के समान होती है | दुन्दुभि को मंगल वाद्य की श्रेणी में रखा जाता है | इसका वादन युद्ध गमन, युद्ध विजय, विजययात्रा, धार्मिक उत्सवों एवं मदिरों में होता है |

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

21. भेरी - इसकी लम्बाई तीन वितस्ति है जिसका निर्माण तांबें से होता है | इसके दोनों मुख चौबीस अंगुल के कड़ों से युक्त होते हैं | वादन दाहिने हाथ से कोण द्वारा एवं बाएँ हाथ के आघात से होता है | इसका प्रयोजन शत्रुओं को भयभीत करने के लिए है इसी कारण इसमें से अत्यन्त उद्भट आवाज प्रकट होती है | तंकार पाट भेरी के प्रमुख वर्ण है | यह विस्तृत आकार और गम्भीर ध्वनि वाला वाद्य है |

22. नि:साण- इसका निर्माण कांसे, तांबे और लोहे से होता है जिसमें कांसे से बना नि:साण उत्तम माना जाता है यह एक मुख वाला वाद्य है जिसको कोण से बजाया जाता है | यह शत्रुओं को भयभीत करने के लिए होती है जिसका आवाज हृदय का भेदन करता है |

23. तुम्बकी- इसके बनावट की समानता नि:साण के समान है | यह आकार में छोटा होने के कारण नाद की अधिकता न्यून होती है | इसे लघ्वी ताम्मकी और तम्बकी कहा जाता है | उपर्युक्त वर्णित दुंदुभि, भेरी, नि:साण और तुम्बकी युद्ध वाद्य की श्रेणी में आता है |

घन वाद्य

वह वाद्य जो ठोककर या आघात से बजाए जाते है उसे घन वाद्य कहा जाता है इसमें ध्वनि आपस में टकराने में उत्पन्न होती है | शारंगदेव के अनुसार 'घनो मूर्तिः साभिघाताद् वाद्यते यत्र तद् घनम् अर्थात् घन का पर्याय ठोस वस्तु है जिसको ठकराकर या आघात करके बजाया

तालोऽथ कांस्यतालः स्याद् घण्टा च क्षुद्रघण्टिका

जयघण्टा ततः कम्रा शुक्तिपट्टादयस्तथा प्रभेदा घनवाद्यस्य |[17]

अर्थात् ताल, कांस्यताल, घण्टा, क्षुद्रघण्टिका, जयघण्टा, कम्रा, शुक्ति और पट्ट आदि का लक्षण दिया है | शारंगदेव ने सर्वप्रथम घन वाद्य का लक्षण देते हुए कहा है 'कांस्यजे घनवाद्ये स्यात् कांस्यमग्नौ सुशोधितम्' अर्थात् घन वाद्य का निर्माण प्रमुख रूप से कांस्य से होता है जिसको अग्नि में तपा करके शुद्ध किया जाता है |

1. ताल- ताल वाद्य का दो जोड़ा होता है जिसका मुख दो अंगुल और मध्य में एक रन्ध्र होता है इसी रन्ध्र से कपड़े का रस्सी बनाकर गांठ लगाया जाता है | इसके रस्सी को तर्जनी और अंगूठे में घेरकर दूसरे ताल को हाथ में लेकर पहले ताल पर आघात करना चाहिए | इस वाद्य का प्रमुख कार्य ताल को धारण करना होता है | यह एक छोटा घन वाद्य है जिसे आधुनिक समय में मंजरी या मंजीरा के नाम से जाना जाता है |

2. कांस्यताल- शारंगदेव के अनुसार 'नलिनीदलसंकाशौ कांस्यतालौ समाकृती' अर्थात् कमल के पत्तों के सदृश्य इसका मुख तेरह अंगुल और नीचे का भाग दो अंगुल का होना चाहिए | झनकट- झनकट इसके मुख्य पाट है | यह वाद्य देखने में ढक्कन आकार की होती है जिसमें से झनकट की आवाज निकलती है |

3. घण्टा- यह कांसे द्वारा निर्मित जिसकी मोटाई आधा अंगुल और ऊंचाई आठ अंगुल की होती है जिसके मुख के मध्य आंतरिक भाग में छोटा घण्टा दोलक रूप में लटका रहता है जिसे हाथ से टकराकर बजाया जाता है | इसमें से टण्- टण् की ध्वनि आती है | यह एक मांगलिक वाद्य है जिसका प्रयोग देवी-देवताओं के पूजा में होता है | वर्तमान में घण्टा का व्यापक प्रयोग मंदिरों में होता है |

4. क्षुद्रघण्टिका- क्षुद्र का अर्थ है छोटा अर्थात् छोटी घंटी जिसे घुँघरू के समान बताया गया है | यह बेर के बीज के बराबर इतना होता है | लोक जन में इसे घर्घरिका एवं मर्मरा के नाम से जाना जाता है | इसका नृत्य करते समय नर्तकी द्वारा प्रयोग किया जाता है |

5. जयघण्टा- कांस्य से निर्मित जयघण्टा का आकार वृत्तनुमा होता है जिसकी मोटाई आधा अंगुल, ठोस और चिकनी होती है इसके सिरे में दो छेद करके डोरी ढालकर बांधी जाती है | इसका वादन बाएं से लटकता हुआ पकड़कर दाहिने हाथ में मजबूत कोण से आघात करके होता है | इसमें से डेंकार ध्वनि सुनाई देती है |

6. कम्रा- इसका निर्माण खैर के वृक्ष से होता है जिसकी लम्बाई बारह अंगुल और चौड़ाई दो अंगुल होती है | कम्रा के दो रूप एक हाथ मे रखकर उसे अंगुली और अंगूठे से धारण करके बजाया जाता है | किरि, किट्टा और किटकिटा इसके मुख्य पाट है | यह एक प्रमुख लोक वाद्य है जिसे राजस्थान में खड़ताल के रूप में जाना जाता है |

7. शुक्ति- शारंगदेव ने इसे सर्प के समान माना है, 'सर्पाकृतिरथो निम्ना कांस्थजा लोहजाथवा' अर्थात् सर्पाकृति आकृति वाली शुक्ति का निर्माण कांसे या लोहे से होता है | यह दो हाथ लम्बी और तीन अंगुल चौड़ी होती है | इसका वादन कोण से होता है जिसमें से किरिकिट्टा पाट की ध्वनि सुनाती है इसी कारण लोक जन में इसे किरकिट्टक कहा जाता है |

8. पट्टवाद्य- इसकी लम्बाई बत्तीस अंगुल और एक हाथ जितनी प्रमाण होती है | ऊपर से नीचे तक सरिकाएं होती है जिस पर कोण से आघात किया जाता है | इसको घुटनों के बीच में रखकर बजाया जाता है | इसके कथथडरट और पाटह प्रमुख पाट है |

निष्कर्ष

संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के वाद्यों का संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त वाद्य, वादन सामग्री, वादन विधि का बहुत सूक्ष्मता के साथ वर्णन हुआ है | इसके मूलतत्व वर्तमान संगीत में उतने ही प्रयोजनीय है जितने मध्यकाल में थे | विभिन्न वाद्य वादन के गूंज के कारण शास्त्रीय संगीत आज अतुलनीय है जिसका प्रयोजन भारतीय सभ्यता, परम्पराओं, घटनाओं और रीति-रिवाजों आदि में होता आया है | आधुनिकता के प्रभाव से आज कुछ वाद्य एतिहा◌ासिक वस्तु रह गए है जिन्हें खोज कर पुन: लाने की आवश्यकता है |

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बसंत, प्रभुलाल गर्ग, (जुलाई-2015), संगीत विशारद (उन्नीसवा संस्करण), हाथरस- संगीत कार्यालय, पृ.- 568
2. चौधरी, सुभद्रा, (2006), संगीतरत्नाकर: तृतीय खण्ड (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- राधा पब्लिकेशन, पृ.- 249
3. वहीं, पृ.- 250
4. वहीं, पृ.- 251
5. भार्गव, डॉ अंजना, (2002), भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ.-89
6. संगीत रत्नाकर, 6/ 110-114
7. भार्गव, डॉ अंजना, (2002), भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ.-86
8. चौधरी, सुभद्रा, (2006), संगीतरत्नाकर: तृतीय खण्ड (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- राधा पब्लिकेशन, पृ.- 278
9. मित्र, श्रीराज्येश्वर, (1999), संगीत रत्नाकर: एक अध्ययन (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ.- 263
10. चौधरी, सुभद्रा, (2006), संगीतरत्नाकर: तृतीय खण्ड (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- राधा पब्लिकेशन, पृ.- 358
11. वहीं, पृ.- 360
12. वहीं, पृ.- 251
13. वहीं, पृ.- 362
14. संगीत रत्नाकर, 6/783, सिंह भूपाल टीका
15. चौधरी, सुभद्रा, (2006), संगीतरत्नाकर: तृतीय खण्ड (प्रथम संस्करण), नई दिल्ली- राधा पब्लिकेशन, पृ.-249
16. वहीं, पृ.- 251
17. वहीं, पृ.- 252